RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-07
July-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i07.009

लोक और लोक साहित्य की विधाएँ : एक अनुशीलन

डॉ. रचना जैन

पी.डी.एफ. शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 July 2020

Keywords
साहित्य, लोक, मौखिक परम्परा, लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोक कहावतें।

***Corresponding Author**
Email: drrjain5[at]gmail.com

ABSTRACT

'लोक साहित्य' ग्रामीण जन समुदाय का साहित्य है। यह ही एक ऐसा साहित्य है जो सामान्य लोकजीवन की भावनाओं, उनकी आकांक्षाओं को व्यक्त कर सकता है। यह सुख–दुःख, आशा–निराशा, आचार–विचार, रीति–रिवाज, पीड़ा, चिंता, हर्ष–विषाद आदि पक्षों को उजागर करता है। अतः कह सकते है कि लोक साहित्य, लोकसंस्कृति का दर्पण है।

प्रस्तावना –

किसी राष्ट्र की अमूल्य निधि 'लोक' ही है। 'लोक' में ही मानवीय इतिहास के ओजस्वी तत्व दिखाई देते हैं। यह एक ऐसा महासागर है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान समाहित रहता है। 'लोक' एक बहुत ही प्राचीन एवं व्यापक शब्द है। जिनका सामान्यतः अर्थ पृथ्वी पर उपस्थित सम्पूर्ण जनसमुदाय से लगाया जा सकता है, जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित रहते हैं। अतः 'लोक' ग्रामीण समाज का प्रतिनिधि करता है।

'लोक साहित्य' दो शब्दों के संयोग से बना है – 'लोक' और 'साहित्य'। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्षन' धातु में 'धञ' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ होता है 'देखना'। लट्लकार के अन्य पुरूष एकवचन में इसका प्रयोग होता है– 'लोकते'। अतः 'लोक' का अर्थ हुआ– 'देखने वाला'। इस प्रकार समस्त जनसमुदाय जो इस क्रिया को करता है, 'लोक' के अन्तर्गत समाविष्ट है। 'लोक' शब्द अंग्रेजी के – 'फोक' का पर्याय है जो ग्राम तथा जन के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके सम्बन्ध में 'इन्सायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में कहा गया है –

''आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही 'लोक' होते हैं और विस्तृत अर्थ में इस शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। इसका साधारण सा अर्थ फोकलोर (लोकवार्ता), फोकम्यूजिक (लोकसंगीत) आदि में संकुचित उन्हीं के लिए आता है जो नागरिक संस्कृति तथा षिक्षा के बाहर पड़ जाते हैं, जो निरक्षर है अथवा उन्हें मामूली सा अक्षर ज्ञान है। जो ग्रामों और जनपदों में निवास करते है।''

साहित्य और संस्कृति के एक विषिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विष्लेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है किन्तु इस दृष्टि से केवल गांव में ही नहीं अपितु विभिन्न जातियों, कुलों, समुदायों, कस्बों, नगरों, पहाड़ी अँचलों, जंगलों और टापुओं में बसा हुआ लोक समाज जो अपने रीति–रिवाज, परम्परा और विष्वासों के प्रति आस्थावान होने के कारण अषिक्षित एवं अल्पसभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके अन्तर्गत समाज में प्रचलित लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोककला, लोककहावतें, मुहावरें तथा पहेलियाँ आदि सोपान आते है। इन सबसे ही लोक साहित्य की श्री वृद्धि होती है।

लोक संस्कृति के विभिन्न पक्षों को लोक साहित्य में देखा जा सकता है। मानव समाज का एक भी ऐसा अंग नहीं है जिसमें लोकसाहित्य अछुता रहा हो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसके दर्षन होते हैं। अतः जन–साधरण को समझने के लिये लोकसाहित्य का ज्ञान होना अत्यंत आवष्यक है। 'लोकसाहित्य' की सुन्दर व्याख्या करते हुए 'डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी' कहते हैं– ''परम्परागत जीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक आचार–विचार, श्रद्धा के द्वारा अभिव्यक्त होता है, उसे लोक–साहित्य कहते हैं।''

इसी तरह लोकवाणी के महत्व को स्पष्ट करते हुए मालवी लोक साहित्य में डॉ.श्याम परमार ने लिखा है कि –''व्यक्तित्व से रहित समान रूप में समाज की आत्मा को व्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियाँ लोक साहित्य की श्रेणी में आती है।

लोक साहित्य की विषेषताएँ –

लोकसाहित्य की निम्न विषेषताएँ हो सकती है, जो इस प्रकार दृष्टव्य है –

1. लोक साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

2. लोक साहित्य जनमानस की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।
3. लोक साहित्य भाषा तथा व्याकरण के नियमों से स्वतंत्र होता है।
4. लोक साहित्य का रचयिता अज्ञात होता है।
5. लोक साहित्य बाहरी आडम्बरों से मुक्त होता है, इसका सम्बन्ध आंतरिक मन से होता है।
6. जीवन की भावनात्मक अभिव्यक्ति लोक साहित्य में निहित होती है।

इस प्रकार लोक साहित्य हमें भूतकाल से जोड़ता है, वर्तमान को आनन्दित करता है और भविष्य के लिए प्रेरणा देता है। मालवा क्षेत्र में लोक साहित्य के विविध रूपों की परम्परा अत्यंत प्राचीन रही है। अतः लोकसाहित्य को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है– लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा तथा लोक कहावत।

विविध भेद :–

1. लोकगीत –

लोकगीत मानव मन का उल्लासमय संगीत है, इसमें सुख भी है और दुःख भी है। जीवन का शायद ही कोई ऐसा अछूता प्रसंग हो जिस पर लोकगीत न प्राप्त होते है। ये प्रकृति के उद्‌गार है। प्रकृति के स्वच्छंद वातावरण में काल और स्थान के अनुसार पल्लवित होने वाला गीत ही 'लोकगीत' कहलाते हैं। सामान्य रूप से देखा जाये तो लोकगीतों की मौखिक परम्परा रही है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। वास्तव में लोकगीत, लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण अंग ही नहीं इसे लोक साहित्य की धड़कन भी कहा जाये तो कोई अतिष्योक्ति नहीं होगी। लोकगीतों के विद्वानों ने अपने–अपने तरिके से इस तरह से परिभाषित किया है– मालवी लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान 'डॉ. श्याम परमार' ने लोकगीत के विषय में कहा है कि –

''लोकगीत न पुराना होता है, न नया वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है, जिसकी जड़े तो दूर जमीन में (भूतकाल) में धसी हुई है। परन्तु जिसमें निरंतर नई डालियाँ, पल्लव और फल–फूलते रहते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि जिस प्रकार एक वृक्ष की जड़ धरती के अन्दर धंसी रहती है लेकिन फिर भी उसमें नित्य नये–नये फल और फूल आते रहते है, उसी तरह लोकगीत की परम्परा भी प्राचीन है, लेकिन इसमें नये–नये गीतों की रचना निरंतर होती रहती है। इसलिए लोकगीत सुनने में हमेषा रमणीय लगते है।

इसी प्रकार लेखिका 'विद्या चौहान' ने लोकगीतों की सीमा रेखा की व्यापकता को बताते हुए लिखा है कि – ''लोकगीतों के जन्म की कोई निर्धारित काल रेखा नहीं है, परंतु मौलिक परंपरा के अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में ये निरंतर असीम अतीत के गर्भ में छिपे उद्‌गम स्त्रोत की ओर इंगित करते हैं।''

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि लोकगीत मौखिक रूप में प्राप्त होते है जो परम्परानुसार नयी पीढ़ी को हस्तांतरित किए जाते रहते है। प्रत्येक अंचल में जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार पूर्ण होते है, लेकिन संस्कारों में सौलह संस्कारों का विषेष महत्व रहता है। यथा– जन्म, गर्भाधान, पुंसवन, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना और मृत्यु प्रमुख है जो अवस्थानुसार सम्पादित किये जाते हैं। इन अवसरों पर स्त्रियाँ अपने कोकिल कण्ठ से गीतों को गा–गा कर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्द को व्यक्त करती है। विवाह संस्कार में सबसे हृदयस्पर्षी पक्ष लड़की की विदाई का होता है। इन गीतों का वर्ण्य विषय अत्यंत रोचक एवं दुःख पूर्ण होता है। विदा होती हुई बेटी से पिता करुण स्वर में कहते है –

''पीछे फिरी ने सीता देखजो वा,
पिताजी ऊबा मंडप माय।
सम्पत हो तो बेटा आवजो नी ती भली परदेस।
रण घणो वो सम्पत थोड़ो बेटा,
तमके लावा बड़ी बेग।''

विदाई के इस करुण गीत को सुनकर सभी व्यक्ति भावुक हो जाते है किन्तु परम्परा का निर्वाह तो करना पड़ता है। इस प्रकार विवाह का वर्णन मालवी लोकगीतों में मिलता है। अतः लोकगीतों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव सदैव विद्यमान रहते है यह जन्म से लेकर मृत्यु तक जुड़े रहते हैं। इसलिए इन्हें मनुष्य का सहजन्मा कहा जाता है। इन गीतों में मर्यादा और संस्कारों का पूरा निर्वाह होता है।

2. लोककथा –

लोक साहित्य में लोक कथाओं का विषिष्ट स्थान है। सच तो यह है कि इन कथाओं द्वारा सर्वसाधारण जनता के मन का जितना अनुरंजन होता है, उतना अन्य किसी के विधा द्वारा नहीं होता। लोककथा साहित्य इन्द्रधनुषीय रंगों जैसा रंगीन है। एक ओर जहाँ इसमें मनोरंजन से परिपूर्ण लोककथाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर षिक्षा, ज्ञान, व्यापार, दर्षन, नीति, ईष्वर, सच्चाई, न्याय, हर्ष–विषाद, लोकाचार, रीतियां–नीतियां आदि विभिन्न प्रकार की लोकप्रथाओं एवं संस्कृति के विभिन्न उपादानों का चित्र उपस्थित होता है।

प्रायः लोककथाएँ ऐतिहासिक, व्रतकथाएँ, चमत्कार प्रधान कथाएँ, पषु–पक्षियों की कथाएँ, नीति कथा, मनोरंजन प्रधान कथाएँ, प्रेम संबंधी कथाएँ, देवी–देवताओं सम्बन्धी आदि प्रकार की होती है। हमारे समाज में कथा कहने एवं सुनने की परम्परा अत्यंत प्राचीन एवं लोकप्रिय रही है। इसे लोकजन दादी–नानी आदि परिजनों से सदियों से सुनते आ रहे हैं और

आज भी ग्रामीण अंचलों में इसका स्वरूप यथावत बना हुआ है।

3. लोकगाथा –

लोकसाहित्य की लोक द्वारा स्वीकृत प्रमुख विधाओं में से एक विधा–लोकगाथा भी है। यह अंग्रेजी के बैलेंड शब्द का समानार्थी है। इसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'बैलारे'' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है – 'नृत्य करना' या 'नाचना'। कालांतर में इस शब्द का प्रयोग लोकगाथाओं के लिए किया जाने लगा है। सामान्यतः लोकगाथा संगीतमय एवं गीतात्मक रचना होती है, जिसमें वीर पुरूषों के साहस, संघर्ष और उनकी गरीमा का गुणगान किया जाता है। इसकी भाषा सरल, सहज और अकृत्रिम होती है। प्रत्येक गाथा पर क्षेत्रीय भाषा का प्रभाव दिखाई देता है, जिससे यह जन–जीवन को अधिक रोचक एवं रूचिपूर्ण लगती है।

लोकगाथाओं के सम्बन्ध में अनेक मनीषियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं – लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान 'डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय' ने गेय कथाओं के अंग्रेजी शब्द बैलेंड का पर्याय मानते हुए कहा है कि ''हमारी सम्पत्ति में लोकगाथा शब्द अधिक भावाभिव्यंजक है।''

इसी प्रकार प्रो. एफ.बी. गुमेर ने इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा है कि –''लोकगाथा गाने के लिए लिखी गई ऐसी कविता है सामग्री की दृष्टि से प्रायः व्यक्ति शून्य रहती है और संभवतः उद्भव की दृष्टि से सामुदायिक नृत्यों से सम्बद्ध रखती है पर इसमें मौखिक परम्परा ही प्रधान है।''

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर स्पष्ट है कि लोकगाथा मुख्य रूप से नृत्य और संगीत से सम्बन्धित है। बिना संगीत के लोकगाथा सुनने में आनंद नहीं लिया जा सकता है। इनकी सबसे बड़ी विषेषता यह होती है कि यह मौखिक रूप से एक से दूसरे कंठ में हस्तांतरित होती रहती है।

अतः लोकगाथाएँ की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। प्रत्येक अंचल में लोकगाथा गायी और सुनी जाती है जो वहॉ कि संस्कृति का परिचायक होती है। उदाहरण के लिए मालवा में भर्तृहरि और गोपीचन्द की गाथा, ढोला मारू की गाथा में राजस्थानी तथा हरदौल गाथा में बुन्देली जनपद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह गाथाएँ मानव समाज को प्रेरणा प्रदान करती है।

4. लोक कहावतें (लोकोक्ति) –

लोक साहित्य में कहावतों का वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान है जैसा लोकगीत, लोककथा और लोकगाथाओं का है। कहावतें मानव मूल्यों की सिद्धांत है, सुक्त वाक्य है। जिनमें विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में मानव जीवन को उन्नत, समृद्ध और सामाजिक बनाने के लिए सूत्र निहित है। 'गागर में सागर' भरने का गुण कहावतों में विद्यमान होता है। इनमें जीवन के अनुभवों का सार संग्रहित रहता है। इनमें मनोरंजन तो होता ही है किन्तु बुद्धि परक होने के कारण ये उक्तियाँ प्रकाष स्तम्भ की भांति मार्गदर्षन का काम करती है।

अनेक विद्वानों ने अपने तरीके से कहावत (लोकोक्ति) को परिभाषित किया है – प्रसिद्ध लोक मनीषि 'डॉ. वासुदेवषरण अग्रवाल' ने कहा है – ''कहावतें हमारी जातीय बुद्धिमता के सूत्र है। शताब्दियों के निरीक्षण और अनुभव के बाद जीवन के विविध व्यवहारों में हम जिस संतुलन स्थिति तक पहुँचते है, लोकोक्ति उसका संक्षिप्त, सत्यात्मक परिचय देती है।''

इसी प्रकार लोक विद्वान 'डॉ. श्याम परमार' ने लिखा है – ''जहाँ मनुष्य का तर्क हार मान लेता है, बुद्धि काम नहीं करती है, वहीं छोटी सी उक्ति समाधान करने की शक्ति रखती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि –

- कहावतों में यथार्थ अनुभव एवं सर्वमान्य सत्य निहित है।
- कहावतें सम्पूर्ण समाज में प्रचलित होती है।
- कहावतें विपरीत परिस्थितियों में हमारा मार्गदर्षन करती है।

अतः लोकोक्तियों में मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं। कहावतों की भाषा या बोली दूसरे प्रान्त में जाकर बदल जाती है लेकिन भाव एक ही रहता है और कभी–कभी तो एक ही अर्थ में उसी प्रदेष की बोली या भाषा में दूसरी कहावतें मिल जाती है। उदाहरण के रूप कुछ में कहावतें दृष्टव्य है –

चादर देखी के पॉव फेलानो चइये। (मालवी)
उत्ते पॉव पसारिये, जितनी चादर होय। (बुन्देली)
चादर देखकर पाँव फैलाने चाहिए। (खड़ी बोली)
(अर्थात् आर्थिक स्थिति के अनुसार खर्च करना उचित होता है।)

इसी प्रकार एक ओर उदाहरण देखिये –
आँख से आंदो ने नाम नेन सुख। (मालवी)
आंख के अंधे उर नाँव नैनसुख। (बुन्देली)
चादर देख कर पॉव फैलाने चाहिए। (खड़ी बोली)
(अर्थात् नाम और गुण के विपरीत होना)

उक्त लोकोक्तियाँ केवल अलग–अलग प्रान्तों में परिवर्तित भाषा एवं बोली के रूप में प्रचलित है लेकिन इनका अर्थ सभी स्थानों पर एक–सा होता है। इसके अतिरिक्त कुछ कहावतें ऐसी होती है जो कवियों एवं मनीषियों की उक्तियाँ होती है। इसमें महाकवि सूर, लोकनायक तुलसीदास, वृन्द,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

रहीम, कबीर, गिरधर कविराय, भविष्यदृष्टा घाघ भड्डरी आदि की उक्तियाँ कहावतों के रूप में प्रसिद्ध है।

प्रसिद्ध लोकनायक तुलसीदास कहते हैं –

''पर उपदेस कुसल बहुतेरे।''

(अतः दूसरों को उपदेष देने में बहुत से लोग निुपण होते हैं।)

इसी तरह संत कबीर ने कहा –

''करता रहा तो क्यों रहा, अब करिक्यों पछताय,
बोये पेड़ बबूल के तो, आम कहां से पाय।''

(अर्थात् जो जैसा करता है, उसे वैसा फल मिलता है।)

अतः हम कह सकते है कि ऐसी अनेक कहावतें प्रचलित है जो व्यावहारिक लोक जीवन से सम्बन्धित है।

निष्कर्ष –

लोक साहितय में सम्पूर्ण मानव जाति की झलक दिखाई है गंगा की स्वच्छ एवं पवित्र धारा के समान लोक साहित्य की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। जिसकी छांव में हम ग्राम जनजीवन के सुखद अनुभवों की मिठास मिलती है। अतः लोक साहित्य के रूप हमारे पूर्वज जो अनमोल ज्ञान हमें सौंप कर गये हैं। हमें उसे सहेजना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ी इनका लाभ सहजता से प्राप्त कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

[1]. डॉ. श्याम परमार – मालवी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृष्ठ 30
[2]. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल – प्रथिवी पुत्र, पृष्ठ 57
[3]. डॉ. श्याम परमार – लोक संस्कृति लेखन–बसंत निरगुणे, पृष्ठ 114 से उद्धत
[4]. डॉ. बापूराव देरगई – लोक साहित्य शास्त्र, पृष्ठ 15
[5]. डॉ. श्याम परमार – मालवी लोकसाहित्य, पृष्ठ 22
[6]. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहबाद, प्रकाषन 1992, पृ. 60,
[7]. सिद्धांत कौमुदी – पृष्ठ 417
[8]. डॉ दुर्गेष दीक्षित – बुन्देली गाथा, पृष्ठ 41
[9]. इनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका – जिल्द 9 पृष्ठ 18, 522
[10].डॉ. शषिकला निगम – जनपदीय संस्कार गीत, म.प्र. के निमाड़ और मालवांचल में प्रचलित संस्कार गीत, संपादक डॉ. कपिल तिवारी, पृष्ठ 516.

RRIJM 2015, All Rights Reserved